॥ ओ३म् ॥

❋ गीता में ईश्वर का स्वरूप ❋

लेखक :

अमर स्वामी सरस्वती
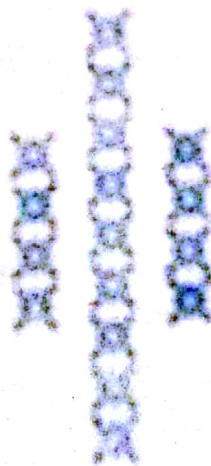
प्रकाशक :

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर, गाज़ियाबाद (उ० प्र०)

प्रकाशक : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग—गाजियबाद

लेखक : अमर स्वामी सरस्वती

मुद्रक : श्रमिक प्रेस को. आपरेटिव इण्डस्ट्रीयल सोसाइटी
लिमिटेड, नवीन शाहदरा दिल्ली-३२

संस्करण : तृतीय बार तीन हजार प्रतियाँ

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
भारत भर के सभी वैदिक साहित्य विक्रेताओं के पास उपलब्ध

शब्द

—सम्पादकीय

प्रिय सज्जनो !

प्रस्तुत पुस्तक **"गीता में ईश्वर का स्वरूप"** नामक पहले श्री अमर स्वामी जी महाराज के जीवित रहते हुए हजारों की संख्या में प्रकाशित होकर वितरित होती ही, इस अनूठी पुस्तक की अत्याधिक माँग हमेशा से ही रही है। पूज्य स्वामी जी महाराज ने इस पुस्तक में वेदों, उपनिषदों व गीता के प्रमाणों द्वारा परमेश्वर के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया है। गीता स्वयं इस विषय में क्या कहती है ? आपको इस अनूठी पुस्तक के अध्ययन से स्वतः ही पता लग जावेगा। यह छोटी सी पुस्तिका अपने विषय की अद्भुत पुस्तक सिद्ध हुई है।

हमारा उद्देश्य पूज्य अमर स्वामी जी महाराज द्वारा लिखित अप्रकाशित तथा अन्य लुप्त वैदिक साहित्य को प्रकाश में लाना है।

निवेदक—

"लाजपत राय अग्रवाल"

आगामी प्रकाशन

इसके बाद हमारा विचार है कि पूज्य अमर स्वामी जी महाराज द्वारा अनेकों छोटे-छोटे ट्रैक्टों का प्रकाशन किया जावे। ये ट्रैक्ट अपने विषय पर अत्याधिक प्रामाणिक तथा सिद्धान्त पोषक सिद्ध होंगे! इन ट्रैक्टों को हम चाहते थे कि पूज्य स्वामी जी महाराज के जीवन काल में ही प्रकाशित कराया जाता, परन्तु अनेकों विवशताएं ऐसी रहीं कि हम चाहते हुए भी उनके जीवन काल में इनको प्रकाशित नहीं करा पाये।

विस्तृत जानकारी के लिए आप प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित् करें।

—निवेदक
"लाजतपराय अग्रवाल"

॥ ओ३म् ॥

॥ गीता में ईश्वर का स्वरूप ॥

समस्त आस्तिक जगत् में कई शताब्दियों से यह विषय विवादास्पद बन गया है कि ईश्वर साकार है या निराकार ? वह न्यायकारी है, दयालु है, सर्व शक्तिमान है, उत्पति, स्थिति प्रलय, आदि का कर्त्ता है, इन विषयों पर ईश्वरवादियों में प्रायः मत भेद नहीं है। परन्तु ईश्वर का स्वरूप क्या है ? इस विषय पर पौराणिक काल से मतभेद आरम्भ हो गया है। और यह विषय विवादास्पद बना हुआ है, इस पर अनेक वार शास्त्रार्थ हो चुके, होते हैं, और होंगे, विषय कोई जटिल नहीं है, कुछ पक्षपातियों ने इसे जटिल सा बना रखा है। भारत में जब से मूर्ति पूजा चली तभी से यह विवाद खड़ा हुआ कि ईश्वर निराकार है या साकार ? निराकार की मूर्ति नहीं बन सकती इसलिए साकार की कल्पना मूर्ति पूजा के पक्षपातियों को करनी पड़ी अब जब कल्पना करनी पड़ी तो **"मण्डे मुण्डे मतिर्भिन्न"** प्रत्येक मस्तिष्क में पृथक-पृथक मतियां होने से परमेश्वर के भिन्न-भिन्न रूपों की भिन्न मतवादियों द्वारा कल्पना कर ली गई है। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में देखिये—

जा क रही भावना जैसी। प्रभु मूर्ति देखी तिन तैसी॥

वैष्णव सम्प्रदाय ने एक रूप बनाया तो शैव मत ने दूसरा और शाक्त मत ने तीसरा रूप घड़ डाला। गीता इन सब सम्प्रदायों को मान्य है, वेद का नाम लेने वाले द्वैतवादी अद्वैत-वादी विशिष्टा-द्वैतवादी आदि-आदि सब ही को गीता के साथ प्रेम है, इसलिए आज मैं इसी पर विचार करता हूं कि गीता में परमेश्वर का क्या स्वरूप बताया गया है अर्थात् गीता में ईश्वर को साकार बताया गया है या निराकार ? गीता अध्याय ८ श्लोक ९ में कहा गया है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्य रुपमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्॥

सर्वज्ञ अनादि सब पर शासन करने वाले सूक्ष्म से भी सूक्ष्म सबका धारण कर्त्ता अचिन्त्य रूप (होते हुए भी ज्ञान द्वारा) सूर्य की तरह प्रकाशित और प्रकाश स्वरूप ? अविद्या अन्धकार से अति परे परमेश्वर को स्मरण करें। इस श्लोक में **"अणोरणीयाँ सम्"** सूक्ष्म से भी सूक्ष्म **"सर्वस्य धातारम्"** सब को धारण करने वाला और **"अचिन्त्य रूपम्"** (दृष्टि में तो क्या) विचार में भी पूर्ण रूप से न आने वाला—यह तीन विशेषण परमेश्वर को निराकार बतलाने वाले स्पष्ट हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म भी निराकार ही हो सकता है, और निराकार ही सब को धारण कर सकता है। साकार किसी को धारण करने

वाला होगा तो किसी के द्वारा धारण किया जाने वाला भी अवश्य होगा, साकार कभी सबका धारक नहीं हो सकता। तीसरा अचिन्त्य रूप स्पष्ट की निराकार का संकेत करता है। साकार तो चिन्त्य भी होता है और दृष्ट भी। इस श्लोक के शब्द वेदादि सत्य शास्त्रों के भिन्न-भिन्न स्थानों से लिये गये हैं यथा—

"कवि" कविर्मनीषी......................" (यजु० ४०।८)

"पुराणम्" वेदाहमेतमजरं पुराणम्..."(श्वेताश्वेतर उपनिषद्)

"अनुशासितारम्" प्रशासितारम् सर्वेषां..................."

(मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक १२२)

"अणोरणीयांसम्" अणोरणीयान्महतो महीयान..............."

(श्वेताश्वेतर उपनिषद् अध्याय ३ वाक्य २०)

"सर्वस्यधातारम्" सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम-" (यजुर्वेद)

"अचिन्त्यरुपम................." (मुण्डकोपनिषद् ३।१।७)

"आदित्य वर्णं तमसः परस्तात्......" (यजुर्वेद ३१।१८)

जिन-जिन वेद मन्त्रों, उपनिषद् वचनों और स्मृति आदि के श्लोकों से गीता के इस श्लोक में शब्दों को लिया गया है, उन सब ही में परमेश्वर का स्वरूप निराकार बताया गया है। सारे मन्त्रों आदि को यहां लिखते है जिससे यह विषय और भी स्पष्ट हो जायेगा।

"कविर्मनीषी......" (यजुर्वेद ४०।८ तथा ईशोपनिषद् मन्त्र ८) से लिया गया है पूरा मन्त्र और अर्थ इस प्रकार है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणं, मस्नाविरँशुद्धमपाप विद्धम् ।
कविर्मनीषीपरिभूःस्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

शब्दार्थ—(सः) वह परमेश्वर (परि-अगात्) सब ओर से सर्वत्र व्यापक (शुक्रम्) [आशुकरम्] सब कार्यों को शीघ्रता से करने वाला (अकायम्) सर्व प्रकार के शरीर रहित (अव्रणम्) व्रण फोड़ा या छिद्र रहित (अस्नाविरम्) नस नाड़ी के बन्धन से रहित (शुद्धम्) पवित्र (अपापविद्धम्) पापों से युक्त नहीं। (कविः) क्रान्तदर्शीसर्वज्ञ (मनीषी) विचारवान और मन की बातों को भी जानने वाला (परिभूः) सब ओर-सर्वत्र विद्यमान (स्वयम्भूः) आप ही अपनी सत्ता वाला स्वयं ही प्रकट प्रकाशमान् है उसमें [किसी और के द्वारा नहीं] (याथातथ्यतः) यथोचित सर्वथा ठीक-ठीक (अर्थात्) सर्व पदार्थों को (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) सदा रहने वाली प्रकृति से समान जीवों के लिए (व्यदधात्) [उस परमात्मा ने] बनाया।

इस मन्त्र में परमेश्वर को "अकायम" शरीर रहित निराकार और सर्व व्यापक आदि विशेषणों से युक्त बताया है यह

निराकार है। गीता के इस श्लोक में इस मन्त्र का प्रमाण माना है जिसमें भगवान को निराकार कहा है।

"पुराणम्"—(श्वेताश्वेतरउपनिषद् अ० ३ मन्त्र २१)

"वेदाहमेतमजरं पुराणम्, सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य, ब्रह्म वादिनो प्रवदन्ति नित्यम्॥

अर्थ—मैं जानता हूं इस अजर [अमर] (पुराणम्) सनातन सर्वसाक्षी सर्वव्यापक परमेश्वर को उसके विभु सर्वत्र विद्यमान होने से। (जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य) जिसका जन्म कभी नहीं होता है उसको ब्रह्मवादी लोग ऐसा कहते हैं और उसको सदा एक रस रहने वाला बताते हैं। इस मन्त्र से गीता के उस श्लोक में "पुराण" शब्द लिया है। इसमें परमेश्वर की निराकारता का ही वर्णन है और कहा है कि जन्म लेता ही नहीं, साकार कभी होता ही नहीं।

प्रशासितारं सर्वेषां अणीयांसमणोरपि।
रुक्माभंस्त्वपनधी गम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥

(मनुस्मृति अ० १२ श्लोक १२२)

सब के ऊपर शासन करने वाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सोने से अधिक चमकदार, स्वप्न की सी एकाग्र बुद्धि से प्राप्त होने वाले परमपुरुष परमेश्वर को (अवश्य) जानना चाहिये।

इस श्लोक से "अनुशासितारम्" शब्द लिया है इसमें भी परमेश्वर को निराकार ही बताया है।

"अणोरणीयाम्"—(श्वेताश्वेतर उपनिषद् अ० ३ मन्त्र ३०)

अणोरणीयाम् महतो महीयान्,
आत्मागुहायांनिहितोऽस्यजन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीत शोको,
धातुः प्रसादान्महि मानमीशम्॥ २२॥

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान परमात्मा इस प्राणी की हृदय गुहा में विद्यमान है।

इस उपनिषद् वाक्य में से "अणोरणीयाम्" लिया है। इसमें भी परमेश्वर को निराकार बतलाते हुए ही यह कहा है कि—वह सबके हृदयों में विराजमान है।

"सर्वस्व धातारम्"—(यजुर्वेद अध्याय १३ मन्त्र ४)

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधारपृथिवींद्यामुतेमाम्, कस्मै देवाय हविषाविधेम्॥

संसार के सारे चमकदार सूर्य चन्द्रमा आदि जिसने अपने गर्भ में (भीतर) ही धारण किये हुए हैं, जो सृष्टि के बनने से पहिले ही विद्यमान था, उत्पद्यमान जगत का प्रसिद्ध पति वह एक ही था और है। (सःदाधार पृथिवीम् द्याम उत् इमाम्)

वह धारण किये हुए है (पृथिवी को, द्यौ लोक, सूर्यादि को और इस सारी सृष्टि को)। उस सुख स्वरूप परमेश्वर के लिए हम विविध प्रकार से भक्ति किया करें।

इस मन्त्र के (**सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्**) से "**सर्वस्य धातारम्**" बनाया है इस मन्त्र में भी परमेश्वर को निराकार ही बताया है।

"**अचिन्त्य रूपम्**"—(मुण्डक उपनिषद् ३।१।७)

"**बृहच्च तत् दिव्यम् अचिन्त्यरुपम्,**
सूक्ष्माच्चसूक्ष्म तरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तकेच पश्यत,
स्विहैव निहितं गुहायाम्॥

वह भगवान् वृहत है, महान हैं, वह दिव्य है, अद्भुत है, अचिन्त्यरूप उसके रूप का चिन्तन या ध्यान नही किया जा सकता है गुणों का ही चिन्तन किया जा सकता है क्योंकि उसका रूप अरूप है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है तथा प्रकाशमान है। वह दूर से दूर तक भी (सर्वत्र) विद्यमान है वह समीप है। (बुद्धि द्वारा) देखने वालों में यहां ही है हृदय गुहा में विराजमान है।

इसमें से उस श्लोक में "**अचिन्त्यरूपम्**" यह लिया है इसमें भी परमेश्वर को निराकार बताया है।

"**आदित्य वर्णम् तमसः परस्तात्**"—(यजु० अ० ३१ मंत्र १८)

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्,
आदित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति,
नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय ॥

मैं जानता हूं कि उस महान् पुरुष परमात्मा का जो आदित्य वर्ण है वह सूर्य की भांती चमकने वाला है (जैसे सूर्य आँख से दीखता है वंसे ही वह बुद्धि से प्रत्यक्ष दीखता है जैसे इसको आँखों से देख कर उसके विषय में कुछ सन्देह नहीं रहता ऐसे ही उसको बुद्धि से देखने के पीछे उस परमात्मा के विषय में कुछ सन्देह शेष नहीं रहता है (तमसः परस्तात्) वह अन्धकार से व अज्ञान से दूर है।

उसको जानकर ही (जीवात्मा) मृत्यु के पार (मुक्ति में) जाता है इस (ज्ञान के) मार्ग से दूसरा कोई मार्ग नहीं। अर्थात् यही मार्ग है कि उसको ज्ञान से बुद्धि से जाना जाय इसके अतिरिक्त उसको आँखों आदि से देखकर मुक्ति पाना चाहे तो असम्भव हैं।

इस मन्त्र में से उस श्लोक में **"आदित्य वर्णं तमसः परस्तात्"** लिया है इस मन्त्र में भी स्पष्ट परमेश्वर को निराकार ही कहा गया है, अभिप्राय यह है कि गीता के उस श्लोक में सात प्रमाण हैं सातों के सातों परमेश्वर को निराकार ही

बतलाते हैं। श्री कृष्णचन्द्र जी महाविद्वान थे उन्होंने वेदादि सर्व शास्त्र पढ़े थे उनके मुख से जो वाणी निकलती थी उसमें वेदों और शास्त्रों के वचन नाचते दिखाई देते थे इसी प्रकार महर्षि द्वैपायन वेदव्यास जी महाराज जो उन वचनों को श्लोकबद्ध करने वाले सर्वशास्त्रवित् थे।

जितने वाक्य प्रमाणों के रूप में ऊपर दिये गये हैं। वह अति स्पष्ट हैं और डंके की चोट में घोषणा कर रहे हैं कि ईश्वर निराकार ही है, गीता के प्रवचन कर्ता ने न केवल अपना मत निराकार के पक्ष में दिया प्रत्युत वेदादि सत्य शास्त्रों के अनेक अकाट्य प्रमाण देकर विषय को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया। आगे और पढ़िये—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नु ते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ।।

(गीता० १३।१२)

जिसको जानना चाहिये, जिसका जानना योग्य है, उसको कहूंगा, जिसको जानकर मनुष्य (मोक्ष) को भोगता है वह आदि रहित अनादि परब्रह्म परमेश्वर है। न वह सत् कहलाता है न असत् कहा जाता है! इस श्लोक में परमेश्वर को जानने योग्य कहा है, देखने योग्य नहीं। साकार स्पष्ट देखा जाता है, परन्तु निराकार को जाना ही जाता है! और बुद्धि द्वारा

जानने को ही देखना भी उपचार द्वारा कह दिया जा सकता है, परन्तु यहां तो उसको जानने योग्य कहकर स्पष्ट ही उसके निराकार होने की साक्षी दी गई है। आगे उसको जानकर मुक्ति को प्राप्त किया जाता है, (देख कर नहीं) यह और भी विषय को स्पष्ट करता है। आगे कहा गया है कि वह सत् कहलाता है न कि असत् ! इसका अभिप्राय यह है कि वह आँखों से दिखता नहीं, इसलिए वह सत् है, यह नहीं कहा जा सकता। और बुद्धि द्वारा जाना जाता है, इसलिए वह असत् अर्थात् नहीं है—यह भी नहीं कहा जा सकता। इससे आगे दो श्लोकों में ईश्वर के स्वरूप को और भी कहा गया है। जो इस प्रकार हैं।

सर्वतः पाणि पादं तत् शर्वतोऽक्षि शिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
(गीता० १३।१३ श्वेताश्वेतर उपनिषद ३।१६)

वह सब ओर से हाथ पैर वाला, सब ओर से आंख सिर और मुख वाला तथा सब ओर से सुनने वाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है।

यह श्लोक ऐसा ही श्वेताश्वेतर उपनिषद. २।२६ में है।

और दोनों ग्रन्थों में वेद के इस मन्त्र के आधार पर ही लिखा गया है यथा—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहु रुतविश्व तस्मात ।
सम बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावा भूमि जनयन्देव एकः ।।
(यजुर्वेद १७।१६)

एक ईश्वर सब ओर से आंखों, और सब ओर से मुखों वाला है, सब ओर से भुजाओं और सब ओर से पैरों वाला है आदि। यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि गीता, उपनिषद, वेद, इनके वाक्यों में ईश्वर को सावयव अर्थात् शरीरधारी अङ्ग प्रत्यङ्गों सहित साकार कहा गया है, साकार के ही आंख, कान, मुख, हाथ और पांव हो सकते हैं, निराकार के मुखादि अवयव कहां ?

इसका उत्तर यह है कि उपनिषद और गीता के श्लोक तथा वेद मन्त्र में, सब मुखादि अवयवों के साथ क्रमशः— "**सर्वतः**" और "**विश्वतः**" शब्द पड़े हैं, जिनका अर्थ हैं सब ओर या सब ओर से अथवा "**सर्वत्र**" सो किसी भी साकार के सहस्त्रों, लाखों, करोड़ों और अरबों-खरबों अथवा असंख्य मुखादि होने पर भी सब ओर से तथा सर्वत्र नहीं हो सकते हैं, थोड़ा सा विचार करने पर यह घुण्डी खुल जाती है कि जहां या जिस ओर मुख हैं, उस ओर या वहां ही पैर नहीं हो सकते और जिस ओर या जहां पैर हैं। उस ओर तथा वहां ही आंख-कान और हाथ आदि नही हो सकते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि यह ईश्वर के साकार शरीरावयवों का वर्णन नही प्रत्युत ईश्वर की

सर्वत्र और सब ओर विद्यमान देखने और सुनने आदि की शक्तियों का वर्णन है। क्योंकि ईश्वर तो इन्द्रियों के बिना ही उनके सब कार्यों को सर्वत्र और सब ओर सदा करता रहता है। जैसा कि उपनिषद में कहा है—

अपाणिपादो जवनोगृहीता,

पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः ।

स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेता,

तमाहुरग्रं पुरुषं पुराणम् ।

अर्थात्—वह बिना हाथ के सबका ग्रहण करने वाला, और बिना पैरों के अति वेग वाला अर्थात सर्वत्र विद्यमान है। बिना आंखों के देखता और बिना कानों के सुनता है वह सबको जानता है, पर उसको (पूर्णरूपेण) कोई नहीं जानता। उसको ज्ञानीजन मुख्य और अनादि (पुराण) पुरूष कहते है।

इसी उपनिषद वाक्य का अर्थ लेकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन चौपाईयों को रचा होगा —

बिनु पग चले सुने बिन काना।
बिन कर कर्म करै विधि नाना।।
तन बिन स्पर्श नयन बिन देखा।
गृहै घ्राण बिन वास अशेखा (षे)।।

आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिन बाणी बकता बड़ योगी ।।
बिधि अस भांति अलौकिक करणी ।
महिमा जासु जाय नहि बरणी ।।

(तुलसीदास कृत रामायण बालकाण्ड)

बिना पैरों के चलता और बिना कानों के सुनता है, वह परमेश्वर बिना हाथों के भांति-भांति के कर्मों को करता है। बिना शरीर के छूता और बिना आंखों के देखता है, बिना नाक के सर्व प्रकार की गन्धों को सूंघता है। बिना मुख के सारे रसों का भोगने वाला या ज्ञाता है। और बिना वाणी के बहुत बड़ा उपदेश देने वाला महान योगी है।

बिधि अस भांति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाय नहि बरणी ।।

विधाता की इस भांति अलौकिक करनी है उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

इसी भाव को पुष्ट करने और ईश्वर के साकार शरीर तथा उसके साकार मुखादि के विषय में उत्पन्न होने वाली भ्रान्तियों को दूर करने के लिए गीता में इसी से अगला श्लोक विद्यमान है।

सर्वेन्द्रिय घुणाभासं, सर्वेन्द्रिय विर्वाजितम् ।
असक्तं सर्व भृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च ।।
(श्वेता० ३।१७)

सर्वस्य प्रभु मीशानं, सर्वस्य शरणं बृहत् ।
(गीता १३।१४)

अर्थ— सारी इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है (परवास्तव में) वह परमेश्वर सारी इन्द्रियों से रहित हैं अर्थात उसके मुख, कान, हाथ और पैर आदि नही है, अभिप्राय यह है कि उसको मुखादि अवयवों-इन्द्रियों की कुछ और कभी भी आवश्यकता नहीं है, इन सब कार्यों को करने की उस निराकार की निराकार शक्तियां सर्वत्र सर्वदा विद्यमान रहती है और सदा निराकार रहता हुआ ही सर्व आवश्यक कार्यों-सृष्टि रचना आदि को सर्वदा करता रहता है उसकी सर्व शक्तियां सर्वत्र और सब ओर सदा रहती है । इसी प्रकार आगे और भी—

बहिरन्तश्च भूतानां अचरं चर मेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तद विज्ञेयं, दूरस्थं चान्तिके च तत् ।।
(गीता १३।१५)

अर्थ—वह परमेश्वर सर्व प्राणियों के भीतर और बाहर है वह स्वयं गति रहित पर सबको गति देने वाला है । सूक्ष्म

होने से वह अविज्ञेय (बेमालूम) है वह दूर है इस श्लोक में **"बहिरन्तश्च भूतानां"** **"सूक्ष्मत्वाद अविज्ञेय"** और **"दूरस्थं चान्ति के च तत्"** अर्थात् सब प्राणियों के भीतर और बाहर है "सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है" और वह दूर है तथा निकट है, यह तीनों वाक्य विशेष ध्यान देने योग्य है जो परमेश्वर की निराकारता की विशेष व्याख्या करते हैं। यह श्लोक वेद के, नीचे लिखे मन्त्र के आधार पर रचा गया है यथा—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

(यजु० ४०।५)

अर्थ—वह सबको क्रिया देता है, पर वह स्वयं क्रिया नहीं करता है। वह दूर है, वह निकट है वह सब के भीतर है और इस सब संसार के बाहर भी है। इसी प्रकार—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूत भर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णू प्रभविष्णू च ॥

(गीता १३।१६)

अर्थ—वह बँटा हुआ नहीं है पर सब भूतों में बँटे हुए की भांति स्थित है। सब प्राणियों का पालक संहारक और उत्पादक उसी को जानना चाहिए। इस श्लोक में भी परमेश्वर को सर्वव्यापक बताया गया है, सर्वव्यापक निराकार ही हो सकता है साकार कभी नहीं! आगे और भी—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः पर मुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

(गीता १३।१७)

अर्थ—यह ज्योतियों की भी ज्योति है, अविद्या अन्धकार से परे कहा जाता है, वह ज्ञान स्वरूप है, जानने योग्य है और ज्ञान गम्य अर्थात् ज्ञान द्वारा ही प्राप्त करने योग्य है और सब के हृदयों में विशेष रूप से स्थित है।

इस श्लोक में परमेश्वर को ज्योतियों की ज्योति प्रकाशों का प्रकाश और प्रकाशपुंज कहा है, "ज्ञान ज्ञेयं ज्ञान गम्यं" अर्थात् यह भी बताया है कि ज्ञान स्वरूप हो है। इसलिए वह ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य है, चक्षु आदि इन्द्रियों से देखने योग्य नहीं ज्ञान गम्य—बुद्धि ग्राह्य अर्थात् ज्ञान और बुद्धि से ही ग्रहण तथा प्राप्त करने योग्य है, इन्द्रियों से प्राप्त करने योग्य नहीं।

जो सज्जन ईश्वर को साकार मानते हैं और मूर्ति पूजा को ईश्वर प्राप्ति का साधन समझते हैं। वह इस पर विशेष ध्यान दें कि श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज तो ईश्वर को ज्ञान स्वरूप और ज्ञान गम्य बताते हैं वह चक्षु आदि इन्द्रियों का विषय नहीं है वह केवल ज्ञान का विषय है। कठ उपनिषद १।३।१५ में भी कहा है—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा,
रसं नित्यमगन्ध वच्चयत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परम् ध्रुवम्,
निचाय्यतं मृत्यु मुखात् प्रमुच्यते ॥

वह न शब्द है, न शब्द वाला आकाश, न वह स्पर्श है, न वह स्पर्श वाला वायु, न वह रस वाला जल, न वह रूप है, न वह रूप वाला अग्नि और न वह गन्ध और न गन्ध वाली पथ्वी, वह अव्यय अर्थात् अविनाशी है। कान से शब्द और आकाश, त्वचा से स्पर्श और वायु, आंख से रूप और अग्नि, जीभ से रस और जल का ग्रहण होता है, पर परमेश्वर का इन इन्द्रियों से न ज्ञान होता है न ग्रहण, क्योंकि, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आकाश, वायु अग्नि जल और पृथिवी के गुण तथा कान, त्वचा, आंख, जीभ, नासिका के विषय हैं। परमेश्वर किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है न किसी तत्व से वह बना और न किसी तत्व का गुण है। इसलिये इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है। उसको महाराज ने ज्ञानगम्य— बुद्धि द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य ही बताया है, इसी प्रकार उपनिषद् में भी कहा है कि—

"दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्ममया सूक्ष्मदर्शिभिः" ।

अर्थात्—वह परमेश्वर सूक्ष्म से भी सूक्ष्म देखने वाले

ज्ञानियों से सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही देखा जाता है आंखों द्वारा उसका रूप नहीं देखा जाता है, वेद में भी कहा है—

"तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः ।"

(यजु० ३१।१६)

अर्थ—उसके स्वरूप को धीर पुरुष अर्थात् बुद्धिमान ही देख सकते हैं निर्बुद्धि नही, क्योंकि परमेश्वर आकार रहित है, गुणों से ही उस गुणी का ग्रहण बुद्धि द्वारा किया जा सकता है यही उसका दर्शन है साकार को तो बुद्धिमान और निर्बुद्धि क्या, गधे, गायें, घोड़े, बैल, भैंस, कौवे और कबूतर भी देख सकते हैं। ऐसा वेद में न होता कि बुद्धि द्वारा ही दीखता है। बुद्धिमान ही उसे देख सकते हैं। ऐसा उपनिषद में कभी नहीं होता और वह ज्ञान गम्य है ऐसा गीता में न होता। स्पष्ट है कि गीता में वेद आदि सत्य शास्त्रों के अनुकल ही परमेश्वर को निराकार निरूपण किया है—

इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी इसी प्रकार वर्णन है—

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन सर्व भूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ॥

(गीता १८-६१)

अर्थ—श्री कृष्णचन्द्र जी कहते हैं कि हे अर्जुन ईश्वर सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है, भूत प्राणियों ओर सब जड़

पदार्थों को अपनी माया से यन्त्र अर्थात् मशीन पर चढ़े हुए की भाँति घुमा रहा है यहाँ भी परमेश्वर को व्यापक अर्थात् निराकार ही बताया है। और कहा है कि—

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८।६२)

अर्थ—हे अर्जुन ! सर्व भावों से उसी परमेश्वर की शरण को प्राप्त हो, तुम उसी की कृपा से परम शाँति और मोक्ष सुख को प्राप्त कर सकते हो।

— ईश्वर का नाम —

गीता में परमेश्वर का नाम भी वही बताया गया है जो वेदादि सत्य शास्त्र बताते हैं। यथा—

ओम् खं ब्रह्म ....(यजु० ४०।१७)
ओम् क्रतोस्मर। ....(यजु० ४०।१५)

अर्थात् आकाश की भाँति व्यापक ब्रह्म ओम् नाम वाला है। हे क्रतो ! यज्ञ स्वरूप कर्त्तव्य परायण मनुष्य ! तू परमेश्वर के "ओ३म्" नाम का स्मरण कर।

आगे कठोपनिषद अध्याय २ बल्ली २ वाक्य १५ में देखिये—

**सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥**

अर्थ—सारे वेद जिस पद की महिमा गाते हैं, और सब तपस्वी जिसको बोलते हैं जिसको चाहते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस नाम को मैं संक्षेप से कहता हूं वह यह केवल "ओ३म्" नाम है।

उपनिषद में आचार्यों ने इस प्रकार "ओ३म" नाम की महिमा कही है गीता में यही बात और उपनिषद का यही वचन थोड़े से भेद के साथ है। यथा—

**यदक्षरं वेद बिदो वदन्ति,
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्षये ॥**

(गीता ८।११)

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥**

(गीता ७।१३)

जिस अविनाशि "ओ३म" नाम को वेद के जानने वाले वोलते हैं, वीतराग, योगीजन और यति जिस में प्रविष्ट होते हैं। जिस की इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस नाम को मैं संक्षेप से कहूंगा।

"ओ३म" इस एक अविनाशी ब्रह्म नाम को जपता हुआ और उसके पीछे अपने आपको अर्थात आत्मा को याद करता हुआ जो शरीर त्याग कर जाता है वह मनुष्य परम गति को प्राप्त होत ा है।

प्रथम श्लोक में "ओ३म" नाम की बहुत महिमा कही और दूसरे में स्पष्ट रूप से परमेश्वर के नाम "ओ३म" को बताकर उसके जपने का लाभ बतलाया। महाराज श्री कृष्ण जी ने श्री राम कृष्णादि किन्हीं शरीर धारियों के नाम न बताकर निर्विवाद शुद्ध ब्रह्म जो निराकार ही है उसका परम पवित्र नाम "ओ३म" ही जपने के लिये बताया। प्रश्न—श्रीकृष्ण जी ने "मामनुसार" कह कर अपने नाम के स्मरण का अर्जुन को आदेश दिया है। उत्तर स्पष्ट है कि—श्रीकृष्ण जी ने अपने आप को ईश्वर समझ कर नहीं मनुष्य समझ कर यह वाक्य कहा है कि "मामनुस्मर", इसका अर्थ यह है कि पीछे या पश्चात मुझको याद कर यदि वह स्वयं परमेश्वर होते तो केवल यही कहते कि मेरे "ओ३म" नाम का स्मरण कर! यह न कहते कि "ओ३म" नाम जपता हुआ पीछे मेरा स्मरण कर। जब वह स्वयं ही "ओ३म" हैं तो उनके नाम का स्मरण "ओ३म" में ही हो गया और पीछे क्या रह गया? स्पष्ट है—कि अपने आपको अक्षर ब्रह्म से पृथक मानते हैं, और पृथक ही कहते हैं। वास्तव में यहाँ "ओ३म" का अर्थ मुझ कृष्ण को नहीं है प्रत्युत "माम आत्मानम" है अर्थात "ओ३म" जपता हुआ

पीछे आत्मा क ो अर्थात अपने आपको याद करे कि वह भगवान है और मैं भक्त हूं । वह उपास्य है और मैं उपासक हूं वह राजा है और मैं प्रजा हूं, वह गुरु है मैं शिष्य हूं, वह पिता है मैं पुत्र हूं, वह स्वामी है मैं सेवक हूं आदि-आदि । अभिप्राय यह है कि गीता में परमेश्वर के वैदिक नाम "ओ३म" को जपने का आदेश और उपदेश है तथा ओ३म नाम की बड़ी प्रशंसा करके उसके जाप का बड़ा भारी और सर्वोत्तम लाभ परमपद ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति को बताया है ।

— ईश्वर प्राप्ति क विधि —

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि—

सिद्धि प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ।।५०।।
बुद्ध् या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यतक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ।।५१।
विविक्त सेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।।५२।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्ती ब्रह्म भयाय कल्पते ।।५३।।

हें कौन्तेय ! अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष जिस प्रकार ब्रह्म को प्राप्त होता है तथा जो तत्व-ज्ञान

की पराकाष्ठा है उसको भी तू मेरे द्वारा संक्षेप से जान ॥५०॥

विशुद्ध बुद्धि से युक्त धृति से अपने आप को (मन को) वश में करके, शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध इन विषयों की आसक्ति को त्याग कर राग और द्वेष को नष्ट करके ॥५१॥

एकान्त और शुद्ध देश का सेवन करने वाला, युक्त उचित और हल्का भोजन खाने वाला, नित्य ध्यान, योग परायण (वैराग्य) को भली भाँति प्राप्त हुआ ॥५२॥

अहंकार, बल, अभिमान, काम, क्रोध, लोभ को त्याग कर ममता रहित शान्त पुरुष ब्रह्मस्थ होने योग्य होता है ॥५३॥

(गीता १८-५०-५३)

सर्व द्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्यच ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योग धारणाम् ॥

(गीता ८।१२)

अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्य गामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थाऽनु चिन्तयन ॥

(गीता ८।८)

पुरुषः स परः पार्थः भक्तया लभ्यस्त्व नन्यया ।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्व मिदं ततम् ॥

(गीता ८।२२)

इन्द्रिय रूपी सर्व द्वारों को बन्द करके मन को हृदय में रोक कर और प्राणों को मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र) में ले जाकर योग की धारणा, स्थिरता का आश्रय किये हुए "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन" ओ३म इस एकाक्षर ब्रह्म नाम को जपता हुआ चित्त को दूसरी ओर न जाने देकर अभ्यास योग के बल से उसमें स्थिर करके अपने आप को याद रखता हुआ उस दिव्य परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त होता है ॥८।२२॥

इन श्लोकों में ईश्वर प्राप्ति का साधन किसी प्रकार की किसी भी मूर्ति को या किसी शरीर या रूप के ध्यान को नहीं बताया है प्रत्युत बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी करके योगाभ्यास को ही उस पर ब्रह्म की प्राप्ति का एक मात्र साधन बताया है योगाभ्यास निराकारोपासना है ब्रह्म को साकार मानने वाले साकार रूपों और मूर्त्तियों के द्वारा उपासना बताते हैं। उपासना का अर्थ है निकट समीप स्थिति। सो मूर्ति में परमेश्वर के होते हुए भी उपासक उसमें घुस नहीं सकता अतः उपासना नहीं घटती अपने शरीर में उपास्य और उपासक दोनों विद्यमान हैं अतः मूर्तिपूजा आदि सर्वथा छोड़ कर स्व शरीर में ही धारणा ध्यान और समाधि द्वारा संयम करता हुआ परमेश्वर को प्राप्त करे। यह निराकार उपासना ही गीता का लक्ष्य है श्री कृष्णचन्द्र जी कहते हैं कि मैं भी उसी की शरण को प्राप्त होता हूं। यथा—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्,
गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः
प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ (१५।४)

वैराग्य के पीछे उस परमपद परमेश्वर को भली प्रकार खोजना चाहिये जिसमें गये हुये जीव बार-बार नहीं लौटते। उस ही आदि पुरुष परमात्मा को मैं प्राप्त होता हूं जिससे संसार की पुरानी प्रवृत्ति चली आती है।

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।
तत् प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(गीता १८।६२)

निष्कर्ष—सारी गीता में परमेश्वर को कहीं साकार नहीं कहा है। उसको सर्वत्र ही निराकार बताया है, गीता में कहीं भी उसकी मूर्ति बनाने और उसको पूजने की आज्ञा नहीं है। निराकार उपासना का ही वर्णन किया है और योगाभ्यास ही को ईश्वर प्राप्ति का साधन बताया है इस पुस्तक में आये हुए सारे श्लोकों में आप को पता लगेगा कि श्रीकृष्ण जी परमेश्वर को अपने से भिन्न दूसरा समझते हैं और सर्वत्र उसके लिए वह कह-कह कर उसका वर्णन करते हैं। पाठक गण—पढ़ें, विचारें और असत्य को छोड़ कर सत्य को ग्रहण करें।

शमित्योम !

— गायत्री अर्थ-गायन —

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

"**ओ३म्**" हो रक्षक हमारे सब गुणों की खान हो।
अज अमर अद्वैत अव्यय विश्वविद्विद्वान हो ॥१॥
"**भूः**" सदा सब प्राणियों के प्राण के भी प्राण हो।
आप हे जगदीश ! सब संसार के कल्याण हो ॥२॥
"**भुवः**" सब दुख दूर करते आप कृपा निधान हो।
"**स्वः**" सदा सुख रूप सुखमय सुखद सुखधि महान हो ॥३॥
"**तत्**" वही सुप्रसिद्ध ब्रह्म वेद वर्णित सार हो।
"**देव सवितु**" सर्व उत्पादक व पालनहार हो ॥४॥
शुभ "**वरेण्यं**" वरण करने योग्य भगवन ! आप हो।
शुद्ध "**भर्गः**" मलरहित भजनीय हो निष्पाप हो ॥५॥
दिव्यगुण "**देवस्य**" दिव्यस्वरूप देव अनूप के।
"**धीमहि**" धारें हृदय में दिव्यगुण रूप के ॥६॥
"**धियो यो नः**" वह हमारी बुद्धियों का हित करे।
ईश "**प्रचोदयात्**" नित सन्मार्ग में प्रेरित करे ॥७॥
बुद्धि का शुभदान दें अपनी शरण में लीजिये।
वेद पथ का कर पथिक हमको "**अमर**" पद दीजिये ॥८॥

"अमर स्वोमी सरस्वती"

।। ओ३म् ।।

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित एवं प्रसारित

साहित्य की वृहद सूची पत्र अलग से

मंगाकर आर्डर दें ।

"प्रबन्धक"

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

गाजियाबाद